सन्त साहित्य के परिप्रेक्ष्य में 'गुरु' की अवधारणा

डॉ. कृष्ण बीर सिंह

मात्रा दो शब्दों का योग 'गु' एवं 'रु'। अर्थात् गुरु। भारत में इस शब्द का सम्मान ईश्वर से भी अधिक है। बचपन से ही सुनते आये है।''गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागू पायँ....।'' वह विराट व्यक्तित्व जिसके समक्ष ईश्वर भी द्वितीय स्थान पर प्रशन्नता पूर्वक स्वयं को स्थापित होने में गौरव महसूस करे, मात्र 'गुरु' ही है। तभी तो अत्यन्त गर्व के साथ उच्चरित करते हुए प्रणाम करते हैं-

''गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुरेव महेश्वरः
गुरुदेव परमब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः''

जैसाकि उल्लिखित किया जा चुका है गुरु में दो शब्दों का योग है।'गु' का शाब्दिक अर्थ है 'अन्धकार, तम, अज्ञान एवं 'रु' का शाब्दिक अर्थ है रोकने वाला अथवा निवारण करने वाला अथवा दूर करने वाला। जो पशुता से मानवता की ओर ले जाये, समस्त दोषों का निवारण एवं निराकरण कर शुद्धता, निर्मलता, पावनता प्रदान करे, वही गुरु है। 'गुरु' एक ऐसा अणु है जिसमें लाखों ब्रह्माण्ड समाहित हैं। आज नि:सन्देह गुरु शब्द का अर्थ एवं सन्दर्भ अत्यन्त विद्रूप अवस्था में प्रस्तुत हो रहा है। सवा सत्यानाशो प्रिंट मीडिया एवं फिल्मों ने किया है। गैंग के बॉस या मवाली प्रवृति वाले इन्सान को बड़ी सहृदयता से गुरु कह कर सम्बोधित किया जाता है तो हमारे ग्रन्थों में उल्लेखित प्राचीन गुरु का विराट व्यक्तित्व एवं कृतित्व ताश के पत्तों की भाँति हरहरा कर गिर जाता है। खैर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के मध्य वैचारिक दूरियाँ अक्सर उपस्थित रही हैं किन्तु जिस भाँति हमें भवन निर्माण हेतु नींव की अनिवार्यता तो रही है, है एवं रहेगी ठीक इसी भाँति 'गुरु' के वास्तविक स्वरूप को हम विस्मृत नहीं कर सकते।

कोर्य उत्तरा (12/1/26) में दस प्रकार के व्यक्तियों को 'गुरु' माना गया है-''उपाध्याय, पिता, माता, ज्येष्ठो, भ्राता महीपति''

मातुलः श्चसुरश्चैव मातामह पितामह।
वर्ण ज्येष्ठ पितृ व्यश्च सर्वते गुरवः समृताः।''

नि:सन्देह मानव ने अपनी आवश्यकतानुसार ही गुरु पद का भी सृजन कर लिया है। उसे जिस स्थान पर जिस कार्य में सहायता हेतु जिसकी भी आवश्यकता महसूस हुई उसी को इस श्रेणी में सम्मिलित कर लिया। किन्तु पुनः इस तथ्य पर गहन चिन्तन करना अनिवार्य है कि वास्तव में गुरु कौन-कैसा हो? गुरु की आवश्यकता क्यों हैं?

पविर्तित समय परिवेश में गुरु आज शिक्षा अध्यापक या टीचर रूप में संज्ञित होने लगा है। इससे सीधा अर्थ यही निकलता है कि अपने विषय में विशेषज्ञता प्राप्त वह व्यक्ति जो अपने शिष्यों या छात्रों का उक्त विषय का ज्ञान करवाता है, गुरु, शिक्षक या अध्यापक कहलाता है। किन्तु गुरु शब्द की यह अत्यन्त संकुचित व विद्रूपतापूर्ण स्थिति है जो भौतिकता के चक्रव्यूह में फँसकर पंगु सी प्रतीत हो रही है संक्षेप में, हमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करतेहुए सन्त साहित्य में गुरु की स्थिति एवं महत्त्व को देखना होगा।

'गुरु' को विभिन्न विशिष्ट नामों या उपाधियों से भी सम्बोधित किया गया है। मनुस्मृति में उल्लेख है- ''एक देशमतुवेदस्य वेदांगोधीयावापुनः यो अध्यायपर्यात्तवृत्यर्थ'' अर्थात् जो ज्ञान मार्ग का उपदेश दे वही गुरु है। [1]

जो शास्त्रों के मर्मत्तत्व को जानने वाला हो, स्वयं सदाचारी हो एवं अन्य जनता को भी सदाचारी बनाने वाला हो वह आचार्य ही गुरु है। [2] अथर्वेद में गुरु को आचार्य से संज्ञित एवं सम्बोधित किया है जबकि ऋग्वेद में **वाचस,** जो अत्यन्त गूढ़ ज्ञानी हो। वेदों में सूर्य, चन्द्रमा, यम, आचार्य, वरुण, आदि नामों से संक्षिप्त किया गया है। उपनिषदों में गुरु के सम्बन्ध में इस प्रकार उल्लेख प्राप्त होते हैं- ईश्वरभक्त, वेदों के ज्ञान से सम्पन्न आचार्य जो पवित्रतायुक्त योगाज्ञता, योग निष्ठावाला, ईश्वर में विशेषतः लीन गुरुभक्त हो। [3] रामायण में गुरु शब्द का प्रयोग पिता के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।[4] इसी भाँति रघुवंश में चक्रवर्ती राजा हेतु गुरु का सम्बोधन दिखाई देता है।[5] महाभारत में शिव को गुरु के स्थान पर स्थापित किया गया है। इस समबन्ध में भृर्तहरि कहते हैं- जो अन्य के तुच्छ गुणों में पर्वत-सी विशालता भर दे, तीनों लोकों में उपकार की बाढ़ उत्पन्न कर दे जिसके अन्तकरण में अर्थात् मन, वचन, काया में प्रेम रूप अमृत कुण्ड भरा हो, वही गुरु है।[6] शारदातिलम में कहा गया है-''जो इन्द्रियों को जीत चुका हो, समस्त शास्त्रों का ज्ञाता हो, सदाचारी, शुद्ध भावना एवं विचारों वाला परोपकारी जो जप-तप, पूजा-उपासना करने वाला, अमोघ वाणी वाला शांत चितवाला, वेद, योग का अनुशरण करने वाला, शुद्ध देव हृदयी व्यक्ति वास्तव में गुरु बनने लायक होता है।''[7]

कर्म के आधार पर कर्मपुराण में लिखा है-''पिता, माता, ज्येष्ठ भाई, राजा, मामा, श्वसुर, मातामह, पितामह, पिता व माता की सदोहरा भगिनी सास पितामही, ज्येष्ठ भ्रातृजाया तथा गुरु पत्नी सभी गुरु हैं।[8] स्कन्दपुराण में लिखा है-''जिसने गुरु-दीक्षा प्राप्त कर ईश्वर की उपासना नहीं की उसका जीवन व्यर्थ है।''[9] इसी भाँति नारदपुराण में अत्यन्त विस्तृत व सटीक कथन प्राप्त होता है- ''जो विद्यार्थियों के उद्धार हेतु धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष से पूर्ण सम्पूर्ण मंजूषा को अर्पित कर देता हे उससे अधिक महान् कौन हो सकता है।''[10] बाणभट्ट द्वारा रचित ग्रन्थ **कादम्बरी** में गुरु को साक्षात ब्रह्म का रूप बताया गया है।

यदि हम भवभूति द्वारा रचित 'उत्तररामचरित' नाटक को देखें तो उल्लेख है-

अध्यक्ष हिन्दी साहित्य, एस. एस. जी. पारीक पी.जी कॉलेज, जयपुर

''विरति गुरु: प्राज्ञे विद्यां यथैव तथा जड़े।
न च खलु तर्योज्ञाने शक्ति करोत्य पहीत वा॥''

अर्थात् गुरु वही है जो बुद्धिमान एवं मूर्ख दोनों प्रकार के शिष्यों को समान रूप से शिक्षित करता है।[12] गुरु के महत्त्व को अत्यन्त स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हुए श्री हर्ष ने कहा है कि 'नैषधचरितम्' को वही समझ सकता है जो पूरी श्रद्धा के साथ श्री गुरुचरणों में बैठकर नैषध की रमणीयता की जटिल गाँठों को गुरु द्वारा खुलवायेगा।[13] इसी भाँति मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है ''लकड़ी के ढोल की भाँति इस देह को जन्म देने वाले माता-पिता होते हैं किन्तु इस देह में पुरुषार्थ और अध्यात्मक राशि को आचार्य ही भरता है।''[14] बोधसार में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि गुरुकृपा बिना श्रेष्ठ साधक को भी मुक्ति संभव नहीं है।[15] श्रेष्ठ गुरु के विषय में सूत-संहिता में उल्लेख हैं।[16]

''अति वर्णाश्रमी साक्षात गुरुणे गुयरुच्यते
न तत्समोअधिकों वासिमनं लोके अस्येव न संशय॥''

इस प्रकार संक्षेप में हमने देखा कि गुरु समस्त वेदों, पुराणों, संहिताओं, उपनिषदों, स्मृतिग्रन्थों, काव्यग्रन्थों आदि में सर्वत्र व्याप्त है। गुरु का आदर, महत्त्व एवं प्रासंगिकता का उतरोतर बलवति रूप ही दिखाई देता है कही न्यून या ह्रासता के दर्शन नहीं होते। वास्तव में गुरु स्थान एक मानव कसौटी है जो भी मानव इस कसौटी पर खरा उतरकर इस पद को प्राप्त करता था वह गोविन्द से भी श्रेष्ठ व सम्मानीय हो जाता था।

आज के परिप्रेक्ष्य में संक्षिप्त चर्चा करना अनिवार्य एवं प्रासंगिक अवश्य है किन्तु इस बिन्दु पर अन्त में विचार किया जायेगा।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक विशिष्ट कालखण्ड जिसका समय सन् 1318 से सन. 1643 अथ्रात् सम्वत् 1375 से 1700 तक दिखाई देता है जिसमें मानव उद्धार सम्बन्धी ग्रन्थों के अलावा एक सम्पूर्ण व सभ्य इंसान बनने सम्बन्धी हजारों ग्रन्थों की सूची दिखाई देती है। मुख्य रूप से निर्गुण एवं सगुण भक्ति काव्य के अन्तर्गत ज्ञानमार्गी, सूफी काव्य, रामभक्ति काव्य एवं कृष्ण भक्ति काव्य की शाखाएँ स्वतन्त्र रूप से उपलब्ध हैं, किन्तु शोध पत्र के विषयानुसार इन समस्त शाखाओं, प्रशाखाओं में गुरु की परिभाषा, महत्त्व एवं स्थान सर्वोच्च है। इस कालाखण्ड के परिप्रेक्ष्य में गुरु की स्थिति एवं अवस्था के मूल्यांकन का उद्देश्य यही है कि यह कालखण्ड हिन्दी साहित्य के समस्त काल खण्डों में स्वर्णिम या विशिष्ट काल खण्ड है। खैर!

विशेषत: सन्त साहित्य के आधार पर गुरु के महत्त्व का अपना एक विशिष्ट स्थान है। कबीर तो गुरु पर बलिहारी जाते-जाते थकते नहीं है। कबीर का रोम-रोम गुरु ऋण से उऋण नहीं होना चाहता। वे बड़े स्वाभिमान और गर्व से स्वीकार करते हुए कहते हैं- ''सतगुरु के परपात ते मिटि गया सब दुख द्वंद्व।

कह कबीर दुविधा मिटी गुरु मिलिया रामानन्द॥

इसी भाँति गरीबदास कहते हैं-

सद्गुरु पूरन ब्रह्म है, सद्गुरु आप अलेख।
सद्गुरु रमता राम है या में मीन न मेख॥[17]

सूरदास ने तो इन्द्र के लिए ब्रह्मा जी से ही कहला दिया- 'ब्रह्मा कहयौ, बुरौ तुम कियो। निज गुरु को आदर नहिं दियौ। [18] पुन: वे स्मरण दिलाते हुए कहते हैं कि गज, अहिल्या, गणिका, सुरपति, प्रहलाद, षटवांग ऋषि, च्यवन ऋषि सभी का उद्धार गुरु की कृपा के कारण ही संभव हो पाया है।[19]

तुलसी कहते हैं-'मातु पितु गुरु स्वामि सिख धीर करहि सुभाय। लहेउ लाभु तिन्ह जन्म कर मतरू जनमु जग जाय।''[20] इसी प्रकार तुलसी विनय पत्रिका में लिखते हैं- ''द्विज देव गुरु हित संत बिनु संसार पार न पावई।''[21] गुरु के सम्बन्ध में नानक जी कहते हैं कि गुरु के द्वारा ही ज्ञान और ध्यान के विषय में जाना जा सकता है क्योंकि अकथनीय का कथन ही गुरु है। गुरु के बिना सब असंभव है। [22] सहजोबाई अपने गुरु चरणदास पर पूर्णत: न्यौछावर है। वह कहती है-

दीपक ले गुरु ज्ञान को जगत् अंधेरे माहिं।
काम क्रोध मद लोभ में सहजों उरझे नाहि॥ [23]

इसी प्रकार दयाबाई भी गुरु को दुखहर्ता, ब्रह्मा का रूप बताते हुए कहती है-''ताप हरन सब सुख करन दया करत परनाम।''[24] किन्तु चरणदास ने गुरु को भवसागर से पार कराने वाला केवट कहा है- ''गुरु शिष्य केवट तुम होय, करौ भवसागर पारी।'' इसी भाँति सुन्दरदास कहते हैं गुरु के शब्द ही जीवन में जागृति उत्पन्न करते हैं जिसके कारण मुक्ति प्राप्त होती है-

सुन्दर सूता जीव है जाग्या ब्रह्म स्वरूप।
जागन सोवन ते परे , सतगुरु कहया अनूप॥''[25]

जायसी तो बिन गुरु जगत् को निरगुन पावा कह कर विराम ले लेते हैं किन्तु रज्जब का गुरु के प्रति सम्मान देखिये-

'भरमजाल भव काटिया, शंका सब तोड़ी।
साँचा संगा जे राम का ल्यौ तासूँ जोड़ी॥'

पुन: कबीर की वाणी सुनते हैं तो प्रतीत होता है एक पलड़े में कबीर गुरु महिमा के साथ विराजमान हैं तो दूसरे पलड़े में शेष सन्तगण है फिर भी कबीर काफी वजनी हो चले हैं-

सतगुरु की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपकार।
लोचन अनन्त उघाड़िया अनन्त दिखावण हार॥

ठीक ऐसा ही नानक कहते हैं कि जिस पर गुरु की कृपा हो जाये उसे अपने घर में ही ईश्वर की प्राप्ति हो जाती है अर्थात् वह समस्त भटकनों से मुक्त हो जाता है-

''साधन आपु गवाइया गुरकै सबद सीगारु।
घर ही सो पिरु पाइआ गुर के हेति अपारु॥''[26]

गुरु की कृपा के प्रतिफल का परिणाम कैसा होता है इसके विषय में केशवदास कहते हैं-''सात द्वीप नौ खण्ड के ऊपर अगम आवास।'' [27] संत पलटू कहते हैं कि गुरु बगिया में शिष्य या साधक पुष्प की भाँति विकसित होकर सुगन्ध बिखेरता है।[28] रामचरित के बालकाण्ड में तुलसी ने स्पष्टत: अत्यन्त निर्णयात्मक रूप से कह दिया है-

''गुरु पदरज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिय दुग कोष विभंजन
तेहिं करि विमल विवेक विलोचन। वरनउ रामचरित भवमोचन॥

कूर्मपुराण में गुरु की स्थिति एवं गुरु के सम्मान के विषय में विस्तृत रूप से व्याख्या की गई है- गुरु का सदैव मन, वाणी एवं काया से अनुसरण करना अपेक्षित है। गुरु के सम्मान में सदैव खड़े होकर एवं कृताजंलि होकर अभिवादन करना चाहिये। गुरु के बराबर में कभी भी नहीं बैठना चाहिए एवं किसी अर्थ को लेकर कभी भी वाद-विवाद नहीं करना चाहिए। निजी स्वार्थ सिद्धि हेतु कभी भी गुरु के साथ भाषण नहीं करना चाहिए। समस्त गुणों से सम्पन्न होने पर भी जो गुरु के प्रति द्वेषभाव अथवा हीनभाव रखता है वह निश्चित रूप से विनाश का भागी होता है।''

यदि गुरु के सन्दर्भ में हम संस्कृत में रचित नीति-शतकों का अध्ययन करते हैं तो गुरु के सम्पूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर व्यापक सामग्री दिखाई देती है। गुरु के बिना ज्ञान और मुक्ति संभव ही नहीं है। नाथ सम्प्रदाय के गोरखनाथ को भी ज्ञान उनके गुरु मत्स्येन्द्र नाथ ने ही दिया था। वर्णन किया जा चुका है पलटू दास, दयाबाई, सहजोबाई, सुन्दरदास कबीर, चरणदास, गारीबदास, मूलकदास एवं नानक अदि गुण को ईश्वर से भी अधिक पूज्य कहते हुए वन्दन करते हैं। इसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण गुरु की शक्ति एवं विशिष्टताएँ ही हैं क्योंकि गुरु एक ऐसा निर्माता है जो व्यक्ति के तन, मन और मस्तिष्क को एक सुन्दर आकार प्रदान करता है। उसके भीतर व्याप्त समस्त दोषों को समाप्त करके उसमें शुद्ध मानवीय गुणों का समावेश करता है। गुरु उस पारस के समान है जो शिष्य को लोहे से सोना बना देता है। वह तो इतना गुणी एवं समदर्शी निर्लिप्त भावी होता है जैसाकि चन्दन का वृक्ष। हजारों सर्प उस पर लिपटे रहते हैं किन्तु चन्दन अपने गुणों को त्याग कर दुर्गुणों को नहीं स्वीकारता। गुरु अहंकारण से मुक्त होता है साथ ही सम्पर्क में आने वाले का भी अहंकार समाप्त करने की क्षमता रखता है।

शायद यही कारण है महाज्ञानी प्रकाण्ड विद्वान कबीर भी गुरु के विषय में दो शब्द कहने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। वे कहते हैं यदि सम्पूर्ण पृथ्वी को कागज एवं समुद्र को स्याही तथा वन को लेखनी का रूप दे भी दिया जाये तो भी गुरु के गुणों, उसके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में वर्णन करना संभव नहीं है। यही है पूर्ण सम्पूर्ण, सच्ची श्रृद्धा और एक शिष्य का गुरु के प्रति सम्मान। आज कबीर ही नहीं अन्य सन्त व विभिन्न समाज सुधारक रचनाकार अपनी पट्टी पर व्यवस्थित रूप में चलते हुए दिखाई देते हैं तो उसका मूल कारण यही है कि उनको गुरु द्वारा इस प्रकार शिक्षित एवं दीक्षित किया गया कि अन्त:करण के समस्त विकारों का मूल विनाश कर दिया। मूल के दर्शन करवा दिये। सत्य और असत्य से साक्षात्कार करवा दिया। पशुता के स्थान पर मानवता को भर दिया। जीव, जगत् और जीवन की परिभाषाओं को समझाकर उस गूढ तत्त्व भेद का ज्ञान करवा दिया जिसके कारण दुर्गणों की उत्पत्ति होती है। तभी तो कबीर बड़े स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हुए कहते हैं-

''पीछे लागा जाई था लोक वेद के साथ
आगे थे सतगुरु मिल्या दीपक दिया हाथा।
हम भी पाहन पूजते होते रण के टोझ
भला हुआ जू गुरु मिल्या तार्‌या सिर तैं बोझ।

गुरु को अमृत की खान बताते हुए दूलहन दास कहते हैं-

''श्री सतगुरु मुख चन्द्र ते सबद सुधा झरि लाग
हृदय सरोवर राखु भरि दूखन जागे भागि।'' [30]

यदि हम सम्पूर्ण सन्त साहित्य में उल्लेखित 'गुरु' के विषय में अध्ययन करते हैं तो एक बात स्पष्ट होती है कि ईश्वर की सत्ता तो मिथ है जबकि गुरु साक्षात रूप से आपको पल-प्रतिपल बुराईयों, दुर्गुणों से बचाते हुए अपनी उंगुली थकाकर चलाता है, सिर पर खड़ा रहकर क्षण-क्षण की सुधि लेता है और समस्त बाधाओं से मुक्ति दिलवाते हुए समस्त पापों से बचाते हुए मुक्ति मार्ग को प्रशस्त करता है। गुरु अपने शिष्य के उज्जवल भविष्य हेतु अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देता है।

मैं सदैव कहा करता हूँ, 'ईश्वर मिथ है। संसार में तीन ही आपके शुभचिन्तक, सहयोगी मित्र, सहायक, पालक या कहिये रक्षक होते हैं। एक-माँ। वह माँ जिसकी रक्त-मज्जा से आपके शरीर का निर्माण हुआ। जिसने अपने शरीर में से आपके शरीर को पैदा किया। दूसरे पिता जिसके रक्त से आपके शरीर निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। जिसने बैल बनकर, गधा बनकर एवं नान-ना रूप धारण करके आपके व्यक्तित्व को बनाने हेतु, धन तन, मन एवं का पोषण किया।

तीसरा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण-गुरु। वह गुरु जिसका आपसे न तो परिवारिक रक्त का सम्बन्ध है, न ही सामाजिक बन्धनों के कारण आपको शरण में लिया है अथवा यों कहें कि उसका आपसे किसी भी स्तर पर प्रत्यक्ष परोक्ष सम्बन्ध पूर्व में नहीं था। किन्तु वह सहर्ष आपको अपनी शरण में लेकर आपके विकृत स्वरूप को सुन्दर व आकर्षक रूप देने में जुट जाता है। वह अपनी तमाम बौद्धिक क्षमताओं को आपमें नि:स्वार्थ भाव से भर देना चाहता है या भरता है। जब कभी शिष्य मूढ़ता करता है तो वह साम, दाम, दण्ड, भेद व नीति की सहायता लेता हुआ आपको निखारता है। कारण, गुरु अपने शिष्य को अपने से अगली पंक्ति से खड़ा हुआ देखना चाहता है। वह उसमें स्वयं से भी अधिक मेधा देखना चाहता है। वह आपके विकास, प्रसन्नता एवं मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त करते हुए दिन-रात चिन्तित रहने लगता है।

कौन होगा ऐसा शुभचिन्तक?

कोई भी परम मित्र, रिस्तेदारी या अन्य कोई भी व्यक्ति निजी स्वार्थ का त्याग नहीं कर सकता। वह स्वयं से आगे किसी को देख नहीं सकता। बस, यही है गुरु की महानता। उसकी विशालता। वरना हमारे समस्त प्राचीन ग्रन्थों में एक स्वर में गुरु के सम्बन्ध में निर्विवाद यह उल्लेख नहीं किया गया होता।'

आज के परिप्रेक्ष्य में नि:सन्देह परिभाषा में व्यापक परिवर्तन दिखाई देते हैं। गुरु, गुरुजी, गुरुघंटाल या फिर मास्टर जी, अध्यापक, टीचर, ट्यूटर आदि अनेकों नाम चलन में आ गये हैं। पाश्चात्य संस्कृति

एवं सभ्यता का प्रभाव 'गुरु' पर भी पड़ा है। समाज, व्यक्ति और गुरु तीनों में खतरनाक परिवर्तन आ गये हैं। आर्थिक पक्ष इतना हावी हो गया है कि बौद्धिक पक्ष पंगु व कमजोर दिखाई देने लगा है अथवा पद की गरिमा, महत्त्व एवं व्यवहार में अप्रत्यासित परिवर्तन आ गये हैं। आज धार्मिक, राजनैतिक आधार पर गुरु शब्द को एकपक्षीय परिभाषित किया जाने लगा है। शैक्षिक स्तर पर गुरु शब्द का व्यवहार समाप्त हो गया है एवं इसके स्थान पर **सर** आ गया है।

मुझे उस वक्त बड़ी पीड़ा होती है जब छात्र से यह पूछता हूँ कि तुम जीवन में क्या बनना चाहते हो? उसका सपाट उत्तर होता है-आई.ए.एस. या राज्य प्रशासनिक सेवा, आई.पी.एस., एम.बी.ए, कम्प्यूटर कोर्स। यदि यह नहीं कर पाया तो पुलिस में भर्ती हो जाऊँगा। यह भी नहीं हुआ तो टीचर बन जाऊँगा। कहने का आशय यह है कि वह व्यक्ति जो समाज निर्माता है आज वह चयन प्रक्रिया में अन्तिम स्थान पर है, तो भला भावी मानव समाज का उत्थान कैसे होगा? शिक्षा का निजीकरण बुरा नहीं है किन्तु असक्षम, अयोग्य अध्यापकों की भर्ती नि:संकोच इस क्षेत्र में विनाश उत्पन्न करेगी। आज शिक्षक स्वयं अनेकों व्यसनों में लिप्त हैं तो भला वे छात्रों की बुराईयों का कैसे निवारण कर पायेंगे?

हमें पुन: सन्त साहित्य में वर्णित गुरु के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की पालना करते हुए इस पुनीत परम्परा को आगे बढ़ाना होगा तभी हमारे देश का समाज का, भला हो सकता है वरना विवेकहीनता की इस आँधी में सब धूमिल हो जायेगा।

जिन खोजा तिन पाइयाँ गहिरे पानी पैठि-पर विचार करने चलना होगा ताकि हम जर्जर होती परम्पराओं एवं आधुनिक युग में उत्पन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं धार्मिक प्रदूषण पर पुन: विषय प्राप्त कर सकें। गुरु किताबी ज्ञान के साथ गुणने की क्षमता भी प्रदान करता है। वह मात्र गुरु ही है जो गोविन्द से मिलवाता है इसलिए-बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो मिलाये अस्तु

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. मनुस्मृति- 2/145
2. वायु पुराण-

आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारै स्थापयत्रत्यपि
स्वयंमाचरेत यस्मादाचार्य स्तेन योच्येत॥

3. अद्वतारकोपनिषद्, पृष्ठ 211/14
4. रामाययण-2/79/2
5. गतो दशरथ: स्वर्ग यो नो गुरुतरोगुरु। राज चक्रवर्ती सम्राट॥
6. भृतहरि-नीतिशतक
7. शारदातिलक
8. कूर्मपुराण-कर्मयोग खण्ड, श्लोक संख्या-23 से 28, पृ.-122
9. स्कन्दपुराण।
10. नारदपुराण, द्वितीय खण्ड, श्लोक- 37 व 38, पृष्ठ सं.-466
11. बाणभट्ट-कादम्बरी-विलासवती सान्तवना, पृष्ठ-240-241.
12. भवभूति-उत्तररामचरित, 2-4
13. श्री हर्ष-नैषधचरितम् 22/152
14. मुण्डोपनिषद् अ. 1-2
15. बोधसार 4/14 -

विनापि क्षेत्रमहात्मयं गुरुमाहात्म्यत: कित:।
विमुक्तिर्त्यम कुत्रापि नकाश्यां गुरुणाविना॥

16. सूतसंहिता-456
17. गरीबदास-संतवानी संग्रह, पृष्ठ-133
18. सूरदास-सूरदास-षष्ठ स्कन्द, 210/193
19. सूरदास-सूरसागर-प्रथम स्कन्द पद- 140, पृ. 115.

गनिका, गीध, अजामिल तारे सबरी औ गजराज।
समदरसी है नाम तुम्हारौ सोई पार करौ॥

20. तुलसीदास-रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दो-70, पृ.-390
21. तुलसीदास-विनयपत्रिका पद 136/12 पृष्ठ-439
22. जयराम मिश्र- नानकवाणी, 22/4
23. सहजोबाई-सहजप्रकाश, पृष्ठ-156
24. दयाबाई-संतबानी संग्रह, पृष्ठ-156
25. सुन्दरदास-संतबानी संग्रह, पृष्ठ-101
26. जयराम मिश्र-नानकवाणी 5/12/152
27. केशवदास-संतवाणी संग्रह, पृष्ठ-162
28. पलटू-संतवाणी संग्रह पृष्ठ-207
29. कूर्मपुराण-कर्मयोग वर्णन, 29-31 पृष्ठ 123
30. इलहन-सन्तवाणी संग्रह, पृष्ठ-126.